International Journal of Multidisciplinary Education and Research
ISSN: 2455-4588; Impact Factor: RJIF 5.12
www.multieducationjournal.com
Volume 1; Issue 6; August 2016; Page No. 40-41

'वेदान्ताऽनुसार' 'जीवन्मुक्तावस्था' का विवेचनात्मक अध्ययन

प्रदीप तिवारी

Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, Bihar, India

प्रस्तावना

सनातन विद्वानों ने जीवन के चार पुरुषार्थ बताये हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– इनमें अन्तिम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष ही जीवन का परम लक्ष्य है। इस परम लक्ष्य को मुक्ति, कैवल्य, निर्वाण एवं निःश्रेयस आदि विभिन्न नामों से अभिव्यक्ति किया गया है। वेदान्त अद्वैतवादी है। उसके अनुसार ब्रह्म ही एक सत् पदार्थ है, शेष समस्त पदार्थ अज्ञानजन्य होने के कारण मिथ्या हैं। मुमुक्षुजन वस्तु–अवस्था का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने के अनन्तर ही समाधिस्थ आत्म–साक्षात्कार करता है। यह आत्म–साक्षात्कार ही ब्राह्मी स्थिति कहलाता है। इसे प्राप्त कर लेने पर अज्ञानजनित मोह का नाश हो जाता है और इसमें स्थित रहकर अन्तकाल में ब्रह्मत्व की प्राप्त हो जाती है, जैसा कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' में भी उल्लिखित है–

एषा ब्राह्मीस्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्थामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।[1]

इस प्रकार आत्म–साक्षात्कार ब्रह्म–दर्शन का पर्याय है। आत्म साक्षात्कार हो जाने पर अविद्या तथा अविद्या का कार्य–रूप संसार समाप्त हो जाता है। संयोग से यदि योगी का शरीरपात उसी समय हो जाय, तब तो वह ब्रह्म में लीन हो जाता है, किन्तु यदि प्रारब्ध कर्म के कारण उसका शरीरपात उस समय नहीं होता है तो वह उस (प्रारब्ध कर्म) के क्षय–पर्यन्त शरीर धारण किये रहता है। ऐसी अवस्था में वह संसार–बंधन से मुक्त ही रहता है। ऐसे ही योगी को जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्त का लक्षण योगीन्द्र सदानन्द ने इस प्रकार लिखा है–

"जीवन्मुक्तो नाम स्वस्वरूपाखण्डब्रह्मज्ञानेन तदज्ञानबाधनद्वारा स्वस्वरूपा खण्डब्रह्मणि साक्षात्कृतेऽज्ञानतत्कार्यसञ्चितकर्म–संशयविपर्ययादीनामपि बाधि–तत्वादखिलबन्धरहितो ब्रह्मनिष्ठः।"[2]

अर्थात् जीवन्मुक्त वह है जो अपने स्वरूपभूत अखण्ड ब्रह्म को जान लेने से ब्रह्मविषयक अज्ञान के बाधित हो जाने से, अपने स्वरूपभत अखण्ड ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाने पर, अज्ञान और अज्ञान के कार्य (सूक्ष्म तथा स्थूल प्रपञ्च), सञ्चित कर्म संशय, विपर्यय आदि के बाधित हो जाने से (शक्तिहीन हो जाने से), सम्पूर्ण बन्धनों से रहित ब्रह्मनिष्ठ है। अपने मत की वेदान्तसम्मतता सिद्ध करने के उद्देश्य से वेदान्तसार–प्रणेता ने श्रुतिप्रमाण भी प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है–

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिन्द्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।[3]

अर्थात् उस परावर (कार्य–कारण–रूप ब्रह्म) का दर्शन कर लिये जाने पर इस (जीवन्मुक्त) के हृदय की (अहंकार–रूप) गाँठ खुल जाती है, सारे सन्देह कट जाते हैं और (प्रारब्ध कर्म को छोड़कर सञ्चित एवं क्रियमाण रूप) सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं।

वेदान्तियों के मतानुसार यह जीव अनादिकाल से अज्ञानावृत्त होकर संसार–चक्र में भ्रमण करता है। प्रत्येक जन्म में वह असंख्य कर्म करता है, जिसका भोग करने के लिये इसे नया जन्म ग्रहण करना पड़ता है। पूर्व जन्मों में किये हुए कर्म ही संचित कर्म कहलाते हैं और नये जन्म में किये जाने वाले कर्मो को क्रियमाण कर्म कहते हैं। संचित कर्मो में से जिस कर्म के फल का भोग करने के लिए जन्म होता है, या जिस कर्म–फल का भोग आत्म–साक्षात्कार से पूर्व किया जा रहा है उसे प्रारब्ध कर्म करते हैं। आत्म–साक्षात्कार हो जाने पर योगी के संचित और क्रियमाण कर्म तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु प्रारब्ध कर्म उसके भोग के अनन्तर ही शान्त होता है। इस स्थल पर यह शंका उत्पन्न होती है कि जीवन्मुक्त अपनी इस अवस्था में भी यदि पूर्ववत् कर्म ही करता है ता वह कर्म बन्धन से मुक्त कहाँ हुआ? उसे तो बद्ध ही कहा जाना चाहिए। इस शंका का समाधान करते हुए रक्त, मूत्र एवं विष्ठा आदि के पात्र शरीर द्वारा, अन्धापन, मन्दता, अपटुता आदि के पात्र इन्द्रिय–समूह द्वारा भूख, शोक, मोह आदि के भाजन अन्तः करण से पूर्व–पूर्व वासना के द्वारा किये जाते हुए क्रियमाण कर्मों को तथा भोगे जाते हुए प्रारब्ध कर्म के ज्ञानानुकूल फलों को साक्षि भाव से देखता हुआ भी अज्ञान के बाधित हो जाने से वस्तुतः नहीं देखता। जैसे 'यह इन्द्रजाल है' ऐसा समझने वाला व्यक्ति उस इन्द्रजाल को देखता हुआ भी 'यह यथार्थ है' ऐसा नहीं मानता। तात्पर्य यह है कि उस कर्म–फल भोग से सर्वथा अनासक्त किवा उदासीन रहता है। अपने मत की सत्यता सिद्ध करने के लिए उन्होंने 'सचक्षुरचक्षुरिव सकर्णोऽकर्ण इव'[4] इत्यादि श्रुतिवाक्य को भी उद्धृत किया है, जिसका तात्पर्य यह है कि जीवन्मुक्त अवस्था में योगी आँख वाला होने पर भी आँखरहित के समान और कान वाला होने पर भी बिना कान वाले की तरह व्यवहार करता है। 'उपदेशसाहसी' में भी इस तथ्य को यों स्पष्ट किया गया है–

सुषुप्तवज्जाग्रति यो न पाश्यति, द्वयं च पश्यन्नपि चाद्वयत्वतः।
तथा च कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च यः, स आत्मविन्नान्य इतीह निश्चयः।।[5]

अर्थात् जो जागरण के काल में द्वैत को देखता हुआ भी, अद्वैतबुद्धि के कारण, सोये हुए व्यक्ति के समान (वस्तुतः उसे) नहीं देखता है और कर्म करते हुए भी जो निष्क्रिय रहता है, वह आत्मवेत्ता है, दूसरा नहीं, यही वेदान्त का निश्चय है। "कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।"[6] आदि गीता के श्लोकों द्वारा भी उक्त मत की ही पुष्टि होती है। जीवन्मुक्त में या तो शुभ वासनाओं का अनुवर्तन होता है या शुभाशुभ दोनों के प्रति उपेक्षा उत्पन्न हो जाती है। जीवन्मुक्त का यही उदासीन भाव संसार के प्रपञ्च से आत्यन्तिक अनासक्ति का परिचायक है। ब्रह्मवेत्ता में सभी पवित्र आचार तथा पवित्र वासनाएँ अनुवर्तित होती रहती हैं, क्योंकि उनका अभ्यास उसने ज्ञानोदय से पूर्व लम्बे काल तक अनवरत किया है। उसमें अशुभ वासनाओं के उदय तथा अनुवर्तन होने की तो सम्भावना ही नहीं रहती है,

क्योंकि उसकी अशुभ वासनाएँ साधक की दशा में ही अभ्यास से विरत हो जाती है। जैसा कि कहा भी गया है–

बुद्धाद्वैतसतत्त्वस्य यथेष्टाचरणं यदि।
शुनां तत्त्वदृशां चैव को भेदोऽशुचि भक्षणे।।
'ब्रह्मवित्त्वं तथा मुक्त्वा स आत्मज्ञो न चेतरः।'[7]

अर्थात् अद्वैत अथवा अभिन्न ब्रह्म के साक्षात् द्रष्टा का यदि यथेष्टाचरण (इच्छानुसार आचरण) होता है तो कुत्ते के समान तत्त्वसाक्षात्कर्ताओं को भी पवित्रापवित्र में भिन्नता नहीं होती है। 'ब्रह्मज्ञान का त्याग करने वाला आत्मज्ञाता ही होता है, अन्य नहीं। 'यथेष्टाचरण के लिए "न मातृवधेन न पितृवधेन हत्वापि स इमॉल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।"[8] इत्यादि वाक्य उद्धृत किये जाते हैं। वे केवल उसकी प्रशंसा करने के लिए ही हैं। इनसे यह अर्थ कदापि नहीं लेना चाहिए कि ज्ञानी को इस लोक की हिंसा करनी चाहिए, अपितु इसका भाव यह है कि यदि उससे ये कर्म प्रारब्ध के कारण बन भी जायँ तो भी वह उनसे मुक्त रहता है।

जगद्गुरु आदि शंकराचार्य के अनुसार जीवन्मुक्ति सिद्ध है। मृतकों हेतु मोक्ष का आरक्षण नहीं है। मोक्ष तो इसी जीवन में और इसी जगत् में भी प्राप्त किया जा सकता है। मोक्ष नित्य है। उसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं है। स्थूल शरीर पंच भौतिक अर्थात् पाँच तत्वों– क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से बना हुआ है। सूक्ष्म शरीर ग्यारह इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और मन) और अन्तः करण से निर्मित होता है। कारण शरीर का निर्माण अविद्या और कर्म संस्कार से होता है। मृत्यु के समय स्थूल शरीर के नष्ट हो जाने पर भी सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर जीव के साथ लगे रहते हैं। इन्हीं के कारण जीव का पुनर्जन्म होता है। मोक्ष का सम्बन्ध इन तीनों प्रकार के शरीरों से नहीं है। आत्मा का स्वभाव नित्य और शरीर रहित रहना है। अविद्या के कारण आत्मा पर शरीर का अध्यास हो जाता है। इस अध्यास के कारण ही आत्मा की शरीर में आसक्ति हो जाती है। अध्यास भ्रान्ति है। शरीर का अधिष्ठान आत्मा है। आत्मा का साक्षात् ज्ञान होने से अध्यास सदा के लिए समाप्त हो जाता है। आत्म–साक्षात्कार से अविद्या की निवृत्ति हो जाने पर जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है। जीवन्मुक्ति को सुख और दुख का स्पर्श नहीं होता, क्योंकि इनका सम्बन्ध तो शरीर से है।

अतिश्योक्ति क्या कहें, यह समझ लीजिए कि जीवन्मुक्त केवल शरीर स्थिति के लिए ही भोग्य प्रारब्धों का भोग करता है, इन्द्रियों से तृप्त होने के लिए नहीं। उसमें कामना सुख–दुःख आदि भावना का सर्वथा अभाव रहता है। अज्ञान और उसके कार्य रूप संस्कारों का विनाश हो जाने से उसके संचित और क्रियमाण कर्म तो पहले ही नष्ट हो चुकते हैं, प्रारब्ध का भोग समाप्त होते ही परम कैवल्य (मोक्ष) आनन्दैक रस, सकल भिन्नताओं के आभास से रहित होकर अखण्ड ब्रह्म में स्थित हो जाता है। **'**न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति', 'अत्रैव समवलीयन्ते', 'विमुक्तश्च विमुच्यते'[9] इत्यादि श्रुतिवाक्य भी यही कहते हैं, जिनका तात्पर्य है कि उसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते, यहीं पर अविलीन हो जाते हैं तथा फिर मुक्ति प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

संदर्भ–ग्रन्थ

1. श्रीद्मभगवतगीता
2. वेदान्तसार
3. मुण्डक, 2/2/8
4. वेदान्तसार
5. उपदेशसाहस्त्रि शो0 4
6. वेदान्तसार
7. श्रीद्मभगवतगीता
8. ब्रह्मसूत्र
9. वेदान्तसार